IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिंदी की चुनौतिओं और संभावनाओं का वैश्विक सन्दर्भ

कल्पना पाठक

पी.एच.डी. शोध-छात्रा

हिंदी विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हिंदी की उत्पत्ति एक दूरगामी, ऐतिहासिक और बेहद अर्थवान आन्दोलन के दौरान हुई थी । स्वतंत्रता आन्दोलन को राष्ट्रीय परिदृश्य में विस्तारित-प्रसारित करने के लिए एक बहुमान्य माध्यम की आवश्यकता तत्कालीन नेताओं ने समझी थी । हिंदी का अस्तित्व ठीक उर्दू की तर्ज पर उत्तर भारत की बोलचाल की भाषा में धार्मिक आग्रहों और हठों के अनुसरण का ही परिणाम है । 'मतरूकात' का सिद्धांत ही हिंदी को भी जन्म देता है और उर्दू को भी । उत्तर भारत की बोलचाल की भाषा में तत्सम-संस्कृत के शब्द जोड़कर और अरबी-फारसी के शब्द निकालकर हिंदी निर्मित की गयी तथा अरबी-फारसी के शब्द जोड़कर और संस्कृत के शब्द निकालकर उर्दू का स्वरुप तैयार किया गया ।

हिंदी के आरंभिक स्वरुप को छायावादी कवियों की रचनाओं में लक्षित किया जा सकता है । छायावाद का समय वह समय है जब हिंदी की दिशा तय हो चुकी थी । छायावाद से लेकर अस्सी के दशक तक हिंदी की स्वरूपगत संरचना में कोई विशेष भिन्नता देखने को नहीं मिलती, लेकिन छायावादी हिंदी की तत्सम-प्रियता को चुनौती मिलती है और हिंदी शास्त्र के सिंहासन से उतरकर धरातल पर चलने लगती है ।

हिंदी के साथ तमाम वैश्विक प्रश्न 1992 ई. के बाद जुड़ते हैं । अतिचर्चित भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण ने भारतीय समाज को एकाएक दूरगामी प्रभावधर्मी परिवर्तनों के सम्मुख खड़ा कर दिया । भारत स्वयं एक बाज़ार के रूप में प्रस्तुत हुआ और भारत के सामने भी विश्व बाज़ार की तरह खुला पड़ा था । वैश्विक स्तर पर हिंदी की भी और भारत की भी एक बड़ी समस्या यह थी कि उसके पास ऐसी कोई वस्तु बेचने के लिए नहीं थी जिसके साथ-साथ हिंदी भाषा और हिंदी संस्कृति दूसरे समाज में प्रवेश कर पाती या हस्तक्षेप कर पाती या वर्चस्व पैदा कर पाती । इसे विज्ञान के ही माध्यम से समझना चाहे तो चीजें स्पष्ट हो जाएँगी । आधुनिकतावादी परियोजनाओं में विज्ञान का विशेष केन्द्रीय महत्व था । विज्ञान पश्चिम की जमीन पर उगता है और विश्व के लगभग सभी समाजों में अपनी आवश्यकता ही नहीं वरन् अनिवार्यता साबित कर देता है । जो समाज उत्पादक था उसने दूसरे समाजों को मात्र उत्पाद ही नहीं बेचा वरन् उत्पाद के साथ अपनी भाषा का भी वर्चस्व विकसित किया । चिकित्सा के क्षेत्र में सभी महत्वपूर्ण शोध पश्चिम में हुए इसलिये चिकित्सा के क्षेत्र में हिंदी भाषा अप्रासंगिक हो गयी । आज की यह प्रस्थिति है कि भारत सहित विश्व की किसी भी संस्था में चिकित्सा का अध्ययन-मनन हिंदी में संभव नहीं है । क्योंकि जिसने उत्पादित किया वह नामकरण भी उसी भाषा में करेगा, इसलिये उत्पादक-समाज की भाषा स्वत: ही दूसरे समाज में प्रवेश कर जाती है और शब्द व्यवहृत होने लगते हैं । भारतीय समाज में 'योग' महत्व का विषय रहा है । जब 'योग' पश्चिमी समाज या अन्य वैश्विक ईकाइयों में प्रवेश किया तो 'योग' ही रहा । कहीं-कहीं उच्चारण में कमोबेश परिवर्तन निश्चित ही हुआ परन्तु मूल शब्द का आधिपत्य बना रहा । कहने का आशय यह है कि भाषा

समाज से स्वतंत्र इकाई नहीं है । भाषा की चुनौतियाँ उसके समाज की चुनौतियाँ हैं । हिंदी समाज को वैश्विक वृहत्तर जीवन में हस्तक्षेप करने के लिए अपनी उत्पादन-क्षमता में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी करनी पड़ेगी । जीवन के हर क्षेत्र में, ज्ञान में, विज्ञान में, दर्शन में, साहित्य में, कला में, प्रौद्योगिकी में, तकनिकी में हिंदी समाज को नवीन गतियों को प्राप्त करना होगा ।

भूमंडलीकरण ने एक प्रतिस्पर्धा को भी जन्म दिया । इस स्पर्धा में वही सफल माना जाता है जो अपनी उपयोगिता साबित करने में सक्षम है । सम्पूर्ण जीवन-दर्शन में उपयोगितावादी मूल्य सर्वोच्चता को प्राप्त कर लिए हैं । हिंदी के सामने भी उपयोगिता का भूत खड़ा है और जिससे हिंदी निश्चित ही डरी हुई है । भाषा का ग्रहण 'क्यों' को पार करने के पश्चात ही किया जाता है । 'कोई वैश्विक जन हिंदी क्यों पढ़ेगा' के उत्तर में ही हिंदी की चुनौतियों को रेखांकित किया जा सकता है । रोजगार एक शक्तिशाली माध्यम है जो भाषा को प्रसारित करता है लेकिन हिंदी रोजगार उत्पन्न करने में उतनी सक्षम नहीं है जितनी उसे बरतने वालों की संख्या है । मात्र भारत में ही हिंदी बोलने वाले समाज और हिंदी से उत्पन्न रोजगार में इतना बड़ा अंतराल है कि हिंदी का भविष्य डरावना नज़र आता है । आप्रवासी भारतीय तक हिंदी को मात्र आत्मीयता के व्याकरण से ही समझने का प्रयास करते हैं । "आप्रवासी भारतीयों की संतानें कर्तव्यबोध, भावबोध और सौन्दर्यबोध के लिए हिंदी पढ़ना चाहती हैं, न कि किसी अन्य प्रयोजन, सर्टिफिकेट या डिग्री प्राप्त करने के लिये जो उन्हें रोजगार दे सके ।"[1] रोजगार की गुणवत्ता भी होती है । यदि हिंदी वैश्विक स्तर पर किसी रोजगार का निर्माण कर भी रही है तो उसकी तुलना भी उपयोगितावाद ही करेगा ।

उत्तराधुनिक शर्तों ने हिंदी के सामने नये अवसर भी पेश किये हैं और नयी चुनौतियाँ भी । भाषा के क्षेत्र में अंग्रेजी महावृत्तान्तनात्मक भाषा है । उत्तराधुनिक प्रस्थितियों में अंग्रेजी की स्थिति में अंतर आया है और उसे अन्य भाषाओं से चुनौती मिल रही है । हिंदी की स्थिति विडंबनात्मक है । भारतीय संदर्भ में हिंदी स्वयं महाख्यान के रूप में विकसित हुई । अब अन्य बोलियाँ हिंदी के वर्चस्व के विरूद्ध मुखरित हुई हैं । इस परिस्थिति में हिंदी को अपनी उपस्थिति के ठोस कारणों और तर्कों का विकास करना पड़ेगा । यदि अंग्रेजी का विकल्प और विकल्प के रूप में हिंदी को प्रस्थापित किया जा सकेगा तो हिंदी को और प्राणवान बनाने में यह बहुत सार्थक प्रयास माना जायेगा । यह युग व्यक्ति की भाषा तक ही सीमित न रहकर मशीन की भाषा तक फैला हुआ है । हिंदी को व्यक्ति की चेतना पर तो दखल देना ही होगा, साथ-ही-साथ मशीन की भाषा के रूप में भी प्रस्तुत होना होगा । कंप्यूटर और हिंदी के सम्बन्ध में एक अपरिहार्य चुनौती और प्रश्न यह है- "कंप्यूटर का आविष्कार और विकास पश्चिमी देशों में होने की वजह से उसका संचालन घटक अंग्रेजी भाषा के माध्यम से है और इस कारण यह विचारणीय हो जाता है कि क्या इस भाषा का बोध न रखने वाले अथवा इसका कम ज्ञान वाले व्यक्ति भी इसके अनुलाभों से पूरी तरह से लाभान्वित हो पाते हैं अथवा नहीं ।"[2] कंप्यूटर और हिंदी का प्रश्न बारम्बार दुहराया गया है और जारी है परन्तु उसका उत्तर अभी तक संभव न हो सका । इसका कारण भी हिंदी समाज ही है । यदि हम कोई एप्लीकेशन भी निर्मित कर सकते जो वैश्विक समाज का हिस्सा बन सकता तो कम-से-कम हिंदी का एक शब्द तो दुनिया सीख-जान सकती । लेकिन तकनीक या विज्ञान का वह स्वरुप हिंदी समाज के मूल ही में नहीं है, जिसे विश्व व्यवहार में प्रयुक्त कर रहा है ।

हिंदी की शुचितावादी प्रकृति भी हिंदी का नुकसान करती है । जब कोई समाज किसी शब्द या वस्तु का आयात करता है तो उसमें कुछ परिवर्तन अवश्य ही करता है । परिवर्तन का यह अधिकार समाज के पास होता ही है । उसे किसी से अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती है । यह परिवर्तन मूल-समाज के लिए कई बार उपहास का विषय जान पड़ता है । "भाषा पहले उच्चरित रूप में परिवर्तित होती है ।"[3] हिंदी समाज हिंदी के विशिष्ट उच्चारण का उपहास करना छोड़कर यदि उसी रूप में प्रयुक्त करने देने की नैतिक अनुमति देता है तो यह हिंदी के पक्ष में होगा ।

---

[1] सक्सेना, उषाराजे, ब्रिटेन में हिंदी, मेधा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन 2006, पेज -111

[2] सेठी, डॉ. हरीश कुमार, ई-अनुवाद और हिंदी, किताबघर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013, पेज-147

[3] शर्मा, आचार्य देवेन्द्रनाथ, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, 2001, पेज-44

हिंदी का व्याकरण जटिल माना जाता है और इसमें वर्णों की संख्या भी अधिक मानी जाती है । वैश्विक स्तर पर हिंदी को सुग्राह्य बनाने के लिए अल्पप्राण वर्णों के नीचे बिंदी का प्रयोग कर महाप्राण बना देने का सुझाव भी सही माना जाना चाहिए । इससे वर्ण संख्या में पर्याप्त कमी होगी और गैर हिंदी भाषी के लिए हिंदी अधिगम सरल हो जायेगा । हिंदी में लिंग निर्धारण की भी मानक व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि अनुवाद में सटीकता की प्रतिशतता बढ़ सके ।

भाषा और समाज का सम्बन्ध द्वंदात्मक होता है । मार्क्सवादी विश्लेषण के अनुसार भाषा अधिरचना है। समाज के विभिन्न कार्यशैलियाँ, क्रिया-व्यापार और समाज में आन्तरिक परिवर्तन भाषा को एक नया जन्म देते हैं और नयी भाषा समाज को संवर्द्धित, परिवर्द्धित करने में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप करती है । भाषा के समाज-शास्त्र को समझा जाए तो यह जाना जा सकेगा कि विशेष सामूहिक अवचेतन की संरचना ही उस समूह में व्यवहृत भाषा की संरचना है । इस तरह से एक निष्कर्षात्मक वाक्य की तरह बढ़ा जा सकता है कि भाषा और समाज परस्पर अंतर्भुक्त हैं । कोई भी समाज अपनी भाषा के बाहर अभिव्यक्त नहीं हो सकता लेकिन यह दावा तब तक अधूरा है जब तक उसमें यह तथ्य भी शामिल न किया जा जाये कि कोई भी भाषा अपने समाज से विलग अपना अस्तित्व नहीं रखती है । इसीलिए हिंदी भाषा की चुनौतियाँ और संभावनाएँ प्रथमत:, अंतत: और निष्कर्षत: हिंदी समाज की चुनौतियाँ और संभावनाएँ हैं ।

भाषा, संस्कृति और समाज परस्पर अंतर्संबंधित हैं । व्यक्ति की गरिमा और आत्मसम्मान की सुरक्षा की जिम्मेदारी भाषा की भी है । हिंदी संस्कृति और समाज को यह तय करना पड़ेगा कि वैश्विक पटल पर हिंदी हिंदी भाषी समाज के सम्मान और उसकी गरिमा का कारण बन सके । जीवन के प्रत्येक अनुशासन में दखल देकर ही कोई भाषा अपनी प्राणवत्ता को बचाये रख सकती है । हिंदी को भी हर क्षेत्र में अपनी अर्थपूर्ण मौजूदगी और सकारात्मक उत्पादकता को प्रमाणित करना होगा ।

सहायक ग्रन्थ-सूची:

1. सक्सेना, उषाराजे, ब्रिटेन में हिंदी, मेधा बुक्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, सन 2006
2. सेठी, डॉ. हरीश कुमार, ई-अनुवाद और हिंदी, किताबघर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
3. शर्मा, आचार्य देवेन्द्रनाथ, भाषाविज्ञान की भूमिका, राधाकृष्ण, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, 2001
4. द्विवेदी, डॉ. कपिलदेव, भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, चौदहवाँ संस्करण, 2014 ई.